P-ISSN: 2394-1685
E-ISSN: 2394-1693
Impact Factor (RJIF): 5.38
IJPESH 2025; 12(1): 70-75

https://www.kheljournal.com
Received: 06-11-2024
Accepted: 08-12-2024

कु प्रियंका
शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

प्रो. विनीता बाजपाई मिश्रा
प्रोफेसर, स्पोर्ट्स एंड बायोमेकेनिक्स विभाग लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

डॉ. मनोरमा निखरा
असिस्टेंट प्रोफेसर, योग विज्ञान एवं मानव चेतना विभाग देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत

Corresponding Author:
कु प्रियंका
शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा संस्थान, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

योगचिकित्सा के अंतर्गत षट्कर्म के द्वारा वात पित्त एवं कफ दोष का निवारण : एक अध्ययन

कु प्रियंका, प्रो. विनीता बाजपाई मिश्रा, डॉ. मनोरमा निखरा

DOI: https://doi.org/10.22271/kheljournal.2025.v12.i1b.3631

सारांश

योग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने की कला और विज्ञान है जिसकी उत्पत्ति भारत में हुई है, यह सबसे प्राचीन लेकिन जीवंत जीवित परंपराओं में से एक है जो आज तेजी से लोकप्रिय हो रही है। एक शक्तिशाली तनाव निवारक, योग शारीरिक और मानसिक कल्याण के माध्यम से आत्म-विकास और ज्ञानोदय का एक साधन है। योग के लाभों का एक पहलू स्वास्थ्य और सौंदर्य के बीच संबंध का पता लगाना है। योग बच्चों को मजबूत बनाता है । योग एक कला, विज्ञान और दर्शन है। यह शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और बौद्धिक स्तर पर स्वास्थ्य को बढ़ावा देने की तकनीक प्रदान करता है। योग को मन और शरीर की चिकित्सा का एक रूप माना जाता है। आयुर्वेद में संक्षेपतः तीन दोष माने जाते हैं वात, पित्त तथा कफ–वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयोदोषः समासतः । क्योंकि ये शरीर को दूषित करते हैं इसलिये इन्हें दोष कहा जाता है। घेरण्ड संहिता में बताया गया है कि शरीर में उत्पन्न त्रिदोषों-वात, पित्त, कफ को षट्कर्म के द्वारा संतुलित करते हैं।.

कूटशब्द: योगचिकित्सा, अंतर्गत षट्कर्म, द्वारा वात पित्त, कफ दोष, निवारण

प्रस्तावना

योग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने की कला और विज्ञान है जिसकी उत्पत्ति भारत में हुई है, यह सबसे प्राचीन लेकिन जीवंत जीवित परंपराओं में से एक है जो आज तेजी से लोकप्रिय हो रही है। एक शक्तिशाली तनाव निवारक, योग शारीरिक और मानसिक कल्याण के माध्यम से आत्म-विकास और ज्ञानोदय का एक साधन है।

योग के लाभों का एक पहलू स्वास्थ्य और सौंदर्य के बीच संबंध का पता लगाना है। योग बच्चों को मजबूत बनाता है । योग एक कला, विज्ञान और दर्शन है।

यह शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और बौद्धिक स्तर पर स्वास्थ्य को बढ़ावा देने की तकनीक प्रदान करता है। योग को मन और शरीर की चिकित्सा का एक रूप माना जाता है। आयुर्वेद में संक्षेपतः तीन दोष माने जाते हैं वात, पित्त तथा कफ–वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयोदोषः समासतः । क्योंकि ये शरीर को दूषित करते हैं इसलिये इन्हें दोष कहा जाता है। घेरण्ड संहिता में बताया गया है षट्कर्म दो मुख्य प्राण प्रवाहों, इडा और पिंगला के मध्य सामञ्जस्य स्थापित करते हैं और शरीर में उत्पन्न त्रिदोषों-वात, पित्त, कफ को संतुलित करते हैं। धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति आदि ६ कर्म त्रिदोष के निवारण हेतु बताये गये हैं । जो षट्कर्म के अंतर्गत आते हैं ।

षट्कर्म

षट्कर्म दो मुख्य प्राण प्रवाहों, इडा और पिंगला के मध्य सामञ्जस्य स्थापित करते हैं, जिससे शारीरिक और मानसिक शुद्धि एवं सन्तुलन की प्राप्ति होती है। ये शरीर में उत्पन्न त्रिदोषों-वात, पित्त और कफ को भी सन्तुलित करते हैं। आयुर्वेद एवं हठयोग, दोनों के अनुसार, इन त्रिदोषों में असन्तुलन व्याधि को जन्म देता है। इन षट्कर्मों का उपयोग प्राणायाम तथा योग के अन्य उच्च अभ्यासों के पूर्व भी किया जाता है, ताकि शरीर विकार रहित हो जाए तथा आध्यात्मिक मार्ग में अग्रसर होने में बाधा उत्पन्न न करे।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥12॥ घे. स. अ. १

अर्थ- धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति, इन छः कर्मों का आचरण योगी के लिए आवश्यक है

इन षट्कर्मों के अभ्यास से व्यक्ति समाधि भी प्राप्त करता है। इस मन्त्र में यह घोषणा की गयी है। इन षट्कर्मों द्वारा शरीर की शुद्धि होती है। इनका प्रयोजन केवल शरीर की शुद्धि नहीं, वरन् आत्मशुद्धि भी है, क्योंकि शरीर की शुद्धि के साथ-साथ जब हमारे भीतर से विकार दूर होने लगते हैं, तब स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। बिना शुद्धि के शरीर योग के उच्च अभ्यासों के लिए तैयार भी नहीं हो पायेगा। शुद्धि के पश्चात् मनुष्य इस पृथ्वी पर दीर्घायु हो जीता है।

विकार तथा अशुद्धियाँ-अस्वस्थता ही सबसे बड़ी बीमारी है और अस्वस्थता का मूल कारण है शरीर में विकारों का उत्पन्न होना; शरीर का अशुद्ध होना। ये अशुद्धियाँ शरीर में किसी भी समय, किसी भी अवस्था में उत्पन्न हो सकती हैं। यहाँ अशुद्धि का तात्पर्य गन्दगी से नहीं है। ये अशुद्धियाँ शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक हैं।

आयुर्वेदशास्त्र में संक्षेपतः तीन ही दोष माने जाते हैं-वात, पित्त तथा कफ "वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः"। क्योंकि ये

शरीर को दूषित करते हैं इसलिए इन्हें दोष कहा जाता है।

'दूषणाद्दोषाः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो शरीर को दूषित करते हैं वे दोष हैं, ये दोष शरीर को तभी दूषित करते हैं जब स्वयं विकृत हो जाते हैं। दूषित होने पर ये त्रिदोष शरीर में अनेक तरह के विकार उत्पन्न करते हैं।

चरक संहिता में कहा गया है कि वात, पित्त और कफ ये त्रिदोष प्राणियों के शरीर में सर्वदा रहते हैं। शरीर के प्रकृतिभूत ये त्रिदोष आरोग्य प्रदान करते हैं तथा विकृत होने पर ये विकार कहे जाते हैं।

त्रिदोष का प्रकृतिस्थ रहना ही आरोग्य है-

दोषा पुनस्त्रयो वात पित्त श्लेष्माणः। ते प्रकृति भूताः शरीरोपकारका भवन्ति। विकृतिमापन्नास्तु खलु नानाविधैविकरिः शरीरमुपतापयन्ति ।

अर्थात्

प्राकृतावस्था में लाभकारी और विकृति आने पर शरीर में रोगोत्पत्ति दोषों के ही परिणामस्वरूप होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इनकी साम्यावस्था ही स्वस्थता का प्रतीक है और इसमें परिवर्तन होना विकार का कारण 'रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यरोगताम्'। अतः इन दोषों में परिवतर्न आना ही रोग का मूल कारण होता है। अनेक प्रकार के मिथ्याहार- विहारों के सेवन करने पर भी यदि मनुष्य की क्षमता के आधार कारण दोष का कोप न हो अथवा स्वल्प मात्रा में दोष कुपित हो, तब रोग की संभावना नहीं होती वात, पित्त और कफ का स्थान समग्र शरीर है।

वायु या वात

वायु अथवा वात शरीर रूपी यंत्र का संचालन करने वाला है। शरीर में प्रत्येक धातु स्थूल और सूक्ष्म रचना का कारण वायु ही है। प्रत्येक अवयव का अन्य अवयवों के साथ रचनात्मक तथा कर्म विषयक संधान वायु की ही प्रेरणा से होती है। शरीर की सभी चेष्टाएँ वायु द्वारा ही होती है। वायु से ही उच्छ्वास निःश्वास आदि जीवनोपयोगी अनैच्छिक स्वतंत्र चेष्टाएँ होती हैं। वायु ही मन को उसके विषयों में नियोजित करता है। वायु ही वाणी का प्रवर्तक है। सभी प्राणियों में चेष्टा ज्ञान का मूल वायु ही होता है। शरीर में समस्त प्रकार की क्रियाएँ वायु के द्वारा ही होती है। यह वायु प्राणियों का प्राण माना जाता है। उसी वायु के द्वारा विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, किन्तु रोगों के शमन भी वायु के द्वारा ही होता है। वायु ही दोष और मलों को स्वस्थान पर रखता है और आवश्यकता होने पर योग्य स्थान पर पहुँचाता है। वायु के बिना पित्त और कफ पंगु हैं।

सर्व अवयव और चेष्टाओं का निमित्त भूत होने से वायु सर्वात्म (विश्वरूप) है। वायु ही बल है। वायु ही आयु है। वायु ही प्राणियों का प्राण है। वायु ही हर्ष और उल्लास का हेतु है।

वायु के मुख्य सात गुण हैं - 'रुक्षः शीतो लघुः सूक्ष्म चलोऽथ विशद खरः। शरीर में

वात दोष के क्षय या वृद्धि का जो स्वरूप होता है, वह इन गुणों पर ही आधारित होता है। महाभूत के कारण इन गुणों की क्षय या वृद्धि होती है। इसलिए ही इन्हें भौतिक गुण कहा गया है।

पित्त

'तप संतापे' धातु से कृदन्त विहित प्रत्यय द्वारा 'तपति इति पित्तं' जो शरीर में ताप, गर्मी उत्पन्न करे उसे पित्त कहते हैं। शरीर में पित्त शब्द से उस स्थान का बोध होता है, जो उष्णता प्रदान करता है। पित्त के द्वारा शरीर में जो कुछ भी कार्य संपन्न होता है, वह अग्नि के समान गुण, कर्म वाला होता है इसलिए पित्त शरीर में अग्निभाव का द्योतक है। पित्त शरीरान्तर्गत एक ऐसा महत्त्वपूर्ण धातु है जो शरीर को धारण करता है और अपने प्राकृत कर्मों द्वारा शरीर का उपकार करता है। शरीर को धारण करने के कारण पित्त धातु भी कहलाता है। पित्त के विशिष्ट गुणों के आधार पर ही उसके स्वरूप का निर्धारण किया गया है। उष्णता, तीक्ष्णता, लघुता, द्रवति, अनतिस्निग्धता, शुक्लरहित वर्ण, विस्रगंध, कटु और अम्ल रस तथा सर के पित्त के आत्मरूप है। अतः इन गुणों से युक्त जो भी कोई द्रव्य है वह पित्त है। बाह्य लोक में जो अग्नि का महत्त्व है, वही शरीर में पित्त का है। महर्षि चरक के अनुसार स्नेह, तीक्ष्ण, उष्ण, द्रव, अम्ल, सर और कटुरस वाला पित्त होता है। पित्त, अग्नि महाभूत का प्रतिनिधि द्रव्य है। पित्त के नैसर्गिक गुणों में शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन गुण होते हैं।

कफ

जिस जल से जो फलीभूत होता है, अथवा जिसमें जल होता है, उसको कफ कहते हैं। जो परस्पर विघटित अणुओं को आपस में संश्लिष्ट करके उन्हें मिलाने वाला होता है, वह कफ कहलाता है। शरीर के विभिन्न अवयवों को रस के द्वारा उपश्लेषण तथा पोषण करने वाला श्लेष्म ही होता है। श्लेष्मा के द्वारा शरीर में जो भाव उत्पन्न किये जाते हैं, वे शरीर के पोषण के लिए आवश्यक होते हैं। प्राकृत श्लेष्मा के द्वारा जो शरीर को पोषण प्राप्त होता है, वह शरीर की पुष्टि स्थिरता दृढ़ता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। श्लेष्मा को शरीर के बल का आधार माना गया है अर्थात् शारीरिक बल की पूर्ति के लिए कफ की विशेष उपयोगिता है। वस्तुतः जो श्लेष्म हमें स्थूल रूप से दिखाई देता है, केवल वही उसका स्वरूप नहीं है।

सामान्यतः जो लक्ष्ण, मृदु, स्थिर, श्वेत, स्निग्ध, सान्द्र और गुरु गुण वाला होता है, वही श्लेष्म (कफ) कहलाता है और यही शरीर को धारण करता है। यद्यपि श्लेष्म पंचभौतिक है, तथापि इसमें जल महाभूत की प्रधानता होती है। गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, मधुर और पिच्छिल ये कफ (श्लेष्म) के गुण होते हैं। इसके विपरीत गुण वाले द्रव्यों का सेवन करने से श्लेष्म का शमन होता है।

धौति

अन्तौतिर्दन्तधौतिर्हद्धौतिर्मूलशोधनम्
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम्
॥13॥ घे. स. १

अन्तर्धौति, दन्त धौति, हृद् धौति और मूलशोधन के भेद से धौतिकर्म चार प्रकार का माना गया है। इसके द्वारा योगीजन अपने शरीर को स्वच्छ (स्वस्थ) बनाते हैं

वस्ति

जल वस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्ती च द्विविधौ स्मृतौ ।
जल वस्तिं जले कुर्याच्छुकवस्तिं सदा क्षितौ ॥45॥ घे. स. १
अर्थ - वस्ति कर्म दो प्रकार का होता है- जल वस्ति और शुष्क वस्ति। जल वस्ति का अभ्यास जल में किया जाता है। शुष्क वस्ति का अभ्यास भूमि पर, सूखे स्थल पर किया जाता है।

1. जल वस्ति

नाभिमग्नजले पायुन्यस्तनालोत्कटासनः ।
आकुञ्चनं प्रसारं च जल वस्तिं समाचरेत् ॥
प्रमेहं च उदावर्त क्रूरवायुं निवारयेत्. ।
भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसंमो भवेत् ||

अर्थ- जल में नाभिपर्यन्त बैठकर उत्कट आसन लगायें और गुह्य देश का आकुञ्चन-प्रसारण करें यह जल वस्ति है। यह जल वस्ति कर्म प्रमेह, उदावर्त, क्रूर वायु का निवारण कर शरीर को कामदेव के समान सुन्दर बना देता है।

2. स्थल वस्ति

पश्चिमोत्तानतो वस्तिं चालयित्वा शनैः शनैः ।
अश्विनीमुद्रया पायुमाकुञ्चयेत्प्रसारयेत् ॥48।।
घे.स. १
एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषो न विद्यते ।
विवर्द्धयेज्जठराग्निमामवातं विनाशयेत् ॥49।।
घे.स. १

अर्थ-अश्विनी मुद्रा के द्वारा गुदा का आकुञ्जन एवं प्रसारण करना चाहिए। पश्चिमोत्तानासन में बैठकर नीचे के भाग में वस्ति का परिचालन करें। इसे स्थल वस्ति कहते हैं। इसके साधन से कोष्ठ के दोष एवं आमवात आदि रोगों का शमन और जठराग्नि का वर्धन होता है।

नेति क्रिया

वितस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत् ।
मुखान्त्रिर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नैतिकर्मकम् ॥50
साधनात्रेतिकार्यस्य खेचरीसिद्धिमाप्नुयात् ।
कफदोषा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥51॥ घे. स. १

अर्थ-बालिश्तभर (आधा हाथ) लम्बा डोरा लेकर नासिका में घुसायें और मुख से बाहर निकल दें। इसे नेति कर्म कहते हैं। इसका साधन करने से खेचरी की सिद्धि कफ-दोषों की निवृत्ति और दिव्य दृष्टि की उपलब्धि होती है ।

लौलिकी

अमन्दवेगेन तुन्दं सर्वरोगान्निहन्तीह
भ्रामयेदुभपार्श्वयोः । देहानलविवर्द्धनम् ॥52 ।
। घे. स. १
अर्थ-उदर को दोनों पार्श्वों में अत्यन्त

वेगपूर्वक घुमाना चाहिए। यह लौलिकी, अर्थात् नौलि कर्म सब रोगों का नाशक और जठरानल का उद्दीपक है ।

त्राटक

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
पतन्ति यावदश्रूणि त्राटकं प्रोच्यते बुधैः ॥53॥
एवमभ्यासयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम् ।
नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥54॥ घे. स. १

अर्थ-निमेष-उन्मेष को रोक कर जब तक आँसू न गिरने लगें, तब तक किसी सूक्ष्म लक्ष्य की ओर टकटकी लगा कर देखते रहने को त्राटक कहते हैं। इसके अभ्यास से शाम्भवी मुद्रा की स्थिति होती है। नेत्र के दोषों का निवारण होकर दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है ।

कपालभाति

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः ।
भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोष निवारयेत् ॥55॥ घे. स. १
अर्थ- वातक्रम कपालभाति, व्युत्क्रम कपालभाति और शीतक्रम कपालभाति के भेद से कपालभाति तीन प्रकार की होती है। इसका साधन करने से कफ से उत्पत्र दोषों का निवारण होता है ।

उपसंहार

षट्कर्म अभ्यास के अंतर्गत - धौति, बस्ती, नेति, नौलि, त्राटक, कपालभाति शामिल हैं। इनके माध्यम से-वात, पित, कफ (त्रिदोष) इत्यादि को संतुलित अवस्था में रखा जा सकता है। त्रिदोष जब संतुलित रहते हैं। तो उसके माध्यम से विभिन्न प्रकार की समस्याओं, बीमारियो से बचाव किया जा सकता है । अतः यह अध्ययन करने से पता चलता है कि त्रिदोष को संतुलित करने के लिए षट्कर्म का अभ्यास बहुत आवश्यक है।

संदर्भ

1. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द (२०११). घेरण्ड संहिता. योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत. (पृष्ठ सं. २३, २४, २५, २८-७५, ८८-९६, ११३-१२०)
2. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द (२०१२). आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध. योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत.
3. खिचार, सतपाल (२०१८). हठ रत्नावली. ओमश्री डिवाइन पब्लिकेशन, रनिया, सिरसा, हरियाणा. (पृष्ठ सं. १२-१३, १७-१८)
4. झा, पीताम्बर, दिगम्बरजी, स्वामी (२०१७). हठप्रदीपिका. कैवल्यधाम स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावाला, पुणे, महाराष्ट्र. (पृष्ठ सं. ४४-४६, ४८-४९, ५१-५२,)
5. आयुर्वेद का व्यापक क्षेत्र http://literature.awgp.org/book/aayurved_ka_vyapak_kshetra/v1.9